अमृत लहरी
०३ ए कमला नगर दिल्ली

पण्डितराज जगन्नाथ कृत

अमृत-लहरी

हिन्दी-पद्यानुवाद

श्रीमती डॉ. उषा सत्यव्रत को
सादर भेंट:-
रा. प्र. कौशिक
४।३।७४

श्री रामप्रसाद कौशिक
एम. ए., साहित्याचार्य
विशेष केन्द्रीय विद्यालय
जनकपुरी
नई दिल्ली-१८

प्राप्तिस्थान—
माधव पुस्तकालय
१०३ ए, कमलानगर दिल्ली-७

प्रथमावृत्ति १००० वसन्त सं २०३० मूल्य १-०

मुद्रक—श्रीकण्ठशास्त्री एम. ए. व्याकरणाचार्य,
धर्मप्रेस कमलानगर दिल्ली।

दो शब्द

काशी में साहित्याचार्य के अन्तिम वर्ष में पण्डितराज जगन्नाथ के रसगंगाधर को पढ़ने का अवसर मिला। तब पण्डितराज की काव्य-प्रतिभा से इतना प्रभावित हुआ कि वे मेरे प्रिय कवि बन गए। गंगालहरी के पाठ से अनुराग बढ़ता ही गया। समय मिलने पर गंगालहरी का पद्यानुवाद किया तो मन में बलवती इच्छा हुई कि क्यों न पण्डितराज जगन्नाथ की पांचों लहरियों का पद्यानुवाद किया जाए। तब से मन में निरन्तर एक ही लगन रहती है कि कब यह अनुवाद कार्य पूरा हो।

भगवान् श्री राघवेन्द्र की कृपा से ही यह दिशा मिली है, क्योंकि 'उर प्रेरक रघुवंश गुंसाईं' ही हैं। करुणालहरी में पण्डितराज का पाण्डित्यदर्प विगलित होकर प्रवाहित हुआ है। मेरा ऐसा विश्वास है कि पण्डितराज को अन्तिम समय एकाकी बिताना पड़ा। उनकी प्रिया के वियोग की पुष्टि करुणाविलास से भी होती है। पण्डितराज जगन्नाथ जब भामिनी-विलास, प्राणाभरण (जगदाभरण) तथा रसगंगाधर लिख चुके और उनके मन को शांति नहीं मिली तब उन्होंने पांचों लहरियों (गंगालहरी, अमृतलहरी, करुणालहरी, लक्ष्मी-लहरी, सुधालहरी) की रचना की, ऐसा प्रतीत होता है। अमृतलहरी यमुना की स्तुति में लिखी गई है। भगवान् श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त पण्डितराज जगन्नाथ श्रीकृष्णप्रिया यमुना को कैसे भूल सकते थे? गंगा के समान ही यमुना के प्रति भी उनकी अगाध श्रद्धा और अपार प्रेम अमृतलहरी के प्रत्येक पद से प्रगट होता है। करुणालहरी में वे भगवान् श्रीकृष्ण पर बहुत बिगड़े हैं, खीजे हैं, पर अन्त में उनकी रूपमाधुरी में डूब गए हैं। जो चाहते थे वह उनको

मिल गया है। वे प्रार्थना करते हैं कि भले ही मैं किसानों के घर जन्म लूं पर वे गोविन्दपदारविन्द-अनुरागी हों। आशा है सुधीजन दोनों अनुवादों का आनन्द लेंगे।

मेरे मित्र श्री शिवनारायण शास्त्री अनुवाद कार्य में मुझे निरन्तर प्रेरणा देते रहे हैं। "करुणालहरी" के अनुवाद में उन्होंने मुझे अपने अमूल्य सुझाव दिए हैं। यह अनुवाद कराने का श्रेय उन्हीं को है।

अलीपुर दिल्ली-३६ —रामप्रसाद कौशिक
सोमवती अमावस्या, पौष २०३० विक्रमो।

MAJOR J.P. MISHRA M.A. Ph. D. **PRINCIPAL**
VISHESH KENDRIYA VIDYALAYA
C-2 Area Janakpuri, New Delhi-18

It is a great pleasure to go through Shri R. P. Kaushik's beautiful translations of the poems of Panditraj Jagnnath, especially, the first three, viz. 'Ganga Lahari', 'Amrit Lahari' and 'Karuna Lahari'. The translations bear a great resemblance to the original verses and can be read and enjoyed even as such. The mood of the poet has very well been maintained besides the music, the rhythm and flow of the verses. There is a poetic talent seen in the translations. By reading them, those of us who cannot read Sanskrit, can easily realise how the Ganga and Yamuna rivers have influenced our culture in the olden days and how people looked to them as mother.

I congratulate Kaushik Ji on his sacred and laudable venture.

J. P. Mishra

अमृतलहरी पर कुछ सम्मतियाँ

पण्डितराजजगन्नाथस्य विद्वज्जनप्रथितां भक्तिभावभरितामनुपमकृतिममृतलहरीं राष्ट्रभाषायामुपश्लोकयता भवता बहुरुपकृता धर्मप्रणयिनी भारतीया जनता। अनेन प्रयासेन संस्कृतानभिज्ञोऽपि जनः पण्डितराजस्य सहृदयानन्ददायिन्याः कवितायाः रसास्वादमाकलयिष्यतीति निभाल्य कमपि हर्षप्रकर्षमनुबोभवीति मे चेतः।

—माधवाचार्यः
धर्मधाम कमलानगर, दिल्ली

अनुवाद निश्चित रूप से प्रशंसनीय है।

पं. रामरतन अवस्थी
संपादक "जिझौतिया" त्रैमासिक
नौगाँव, म. प्र.

आपने अमृतलहरी का समपद्यानुवाद करके अपनी विद्वत्ता का सहज परिचय दिया है। आशुतोष भगवान् शङ्कर आपसे अनेकधा ऐसे साहित्य सर्जन करावें।

श्री स्वामी विद्यानन्द गिरिजी
महामण्डलेश्वर, कैलाश आश्रम,
ऋषिकेश,

अमृतलहरी का अनुवाद पढ़कर बहुत प्रसन्नता हुई।

श्री पं. बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते
अध्यक्ष, साहित्य विभाग
वाराणसेय संस्कृत विश्व विद्यालय, वाराणसी

हिन्दी पद्यानुवाद के लिए आप बधाई के पात्र हैं।

डॉ. श्री वागीश शास्त्री
निदेशक, शोध-संस्थान
वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

अमृतलहरी का अनुवाद यथार्थं में हृदयग्राही है। भावों का ऐसा अनुवाद कम ही प्राप्त होता है।

गंगाप्रसाद चतुर्वेदी
एम. ए., (हिन्दी संस्कृत) बी. एड.
राँवसर जागीर, गुना, म. प्र.

जगन्नाथस्यास्मिन्नमृतलहरीकाव्यरसिके-
ऽनुवादे सानन्दं समधिकतरं सुष्ठु रमते।
प्रयासस्ते स्तुत्यः समनुकरणीयः सहृदयैः
सुहिन्दीविद्वद्भिर्विबुधवरवाणीविलसितैः ॥

श्री बी. डी. तिवारी
शिक्षाधिकारी (संस्कृत)
केन्द्रीय विद्यालय संगठन, नेहरुहाउस, नई दिल्ली-१

पूज्य पितृव्य

श्री पं० रामगोपाल चतुर्वेदी

की पावन स्मृति में

रामप्रसाद कौशिक

अमृत - लहरी

(हिन्दी-पद्यानुवाद)

मातः, पातकपातकारिणि, तव प्रातः प्रयातस्तटं
यः कालिन्दि, महेन्द्रनीलपटलस्निग्धां तनुं वीक्षते ।
तस्यारोहति किं न धन्यजनुषः स्वान्तं नितान्तोल्लसन्
नीलाम्भोधरवृन्दवन्दितरुचिर्देवो रमावल्लभः ॥ १ ॥

माता, पातक पतन कारिणी, जो प्रातः तेरे तट पर
इन्द्रनीलमणिस्निग्ध तुम्हारे तनु को देखे इच्छा भर ।
क्या उस धन्य जन्म वाले के निर्मल मन में दिव्य प्रखर
नीलमेघसमकान्तिमान नहीं आते रमाकान्त सत्वर ॥ १ ॥

नित्यं पातकभङ्गमङ्गलजुषां श्रीकण्ठकण्ठत्विषां
तोयानां यमुने, तव स्तवविधौ को याति वाचालताम् ।
येषु द्राग् विनिमज्ज्य सज्जतितरां रम्भाकराम्भोरुह-
स्फूर्जच्चामरवीजितामरपदं जेतुं वराको नरः ॥ २ ॥

नित्य पाप संताप दूर करने वाला यह निर्मल जल
नीलकण्ठ की कण्ठ कान्ति सम, सबका है स्तुत्य सलिल ।
जिसमें शीघ्र स्नान कर सज्जित होता लोक निखिल
रम्भा करकमलों से वीजित, विजित करने स्वर्ग अखिल ॥ २ ॥

दानान्धीकृतगन्धसिन्धुरघटागण्डप्रणालीमिलद्-
भृङ्गालीमुखरीकृताय नृपतिद्वाराय बद्धोऽञ्जलिः ।
त्वत्कूले फलमूलशालिनि मम श्लाघ्यामुरीकुर्वतो
वृत्तिं हन्त मुनेः प्रयान्तु यमुने, वीतज्वरा वासराः ॥ ३ ॥

दानवारि की उग्र गन्ध से चंचल भौंरों से मुखरित
मतवाले गज जहाँ झूमते, राजद्वार पर हों अवनत ।
नित्य याचना करनेवाली उस वृत्ति को करूँ तिरस्कृत
यमुना, तेरे विमल कूल पर मेरे दिन बीतें सत्कृत ॥ ३ ॥

अन्तर्मौक्तिकपुञ्जमञ्जिम बहिः स्निग्धेन्द्रनीलप्रभं
मातर्मे मुदमातनोतु करुणावत्या भवत्याः पयः ।
यद् रूपद्वयधारणादिव नृणामाचूडमामज्जतां
तत्कालं तनुतेतरां हरिहराकारामुदारां तनुम् ॥ ४ ॥

भीतर मुक्ता पुञ्ज मनोहर, बाहर इन्द्रनील मणि सार,
माँ मुझको आनन्द सदा दे तेरी ही निर्मल जलधार ।
जो दो रूपों के धरने से आमज्जन करते मनुजों से
उसी समय हरिहरमय तनु को, फैलाती है परम उदार ॥ ४ ॥

तावत् पापकदम्बडम्बरमिदं, तावत् कृतान्ताद् भयं,
तावन् मानसपद्मसद्मनि भवभ्रान्तेर्महानुत्सवः ।
यावल्लोचनयोः प्रयाति न मनागम्भोजिनी-बन्धुजे,
नृत्यत्तुङ्गतरङ्गभङ्गिरुचिरो वारां प्रवाहस्तव ॥ ५ ॥

तब तक पापों का आडम्बर, तब तक है कृतान्त का डर,
तब तक मानसपद्मवासिनी, है भीषण भव का संगर ।
जब तक नयनों को थोड़ा भी होता नहीं दृष्टिगोचर
कमलदलों पर सदा नाचता तेरा निर्मल वारि मनोहर ॥ ५ ॥

कालिन्दीति कदापि कौतुकवशात् त्वन्नामवर्णानिमान्
व्यस्तानालपतां नृणां यदि करे खेलन्ति संसिद्धयः ।
अन्तर्ध्वान्तकुलान्तकारिणि तव क्षिप्तामृते वारिणि
स्नातानां पुनरन्वहं स महिमा केनाधुना वर्ण्यते ॥ ६ ॥

यदि कभी कौतुकवश तेरा कालिन्दी यह नाम
लेने वाले व्यस्त जनों के, कर में सिद्धि करे विश्राम ।
अन्तर तम की अन्तकारिणी, तेरे अमृत वारि ललाम
में मज्जन करने वालों की, महिमा कौन कहे अभिराम ॥ ६ ॥

स्वर्णस्तेयपरानपेयरसिकान् पाथःकणास्ते यदि
ब्रह्मघ्नान् गुरुतल्पगानपि परित्रातुं गृहीतव्रताः ।
प्रायश्चित्तकुलैरलं तदधुना मातः, परेताधिप-
प्रौढाहंकृतिहारिहुंकृतिमुचामग्रे तव स्रोतसाम् ॥ ७ ॥

स्वर्णचोर और सुरारसिक को गुरु-तल्प-गामियों को सत्वर
ब्राह्मण के हत्यारों को भी पावन करने, तेरे जलकण हैं तत्पर ।
प्रायश्चित्त वृथा करते अब माता, प्रेतों से डर कर
हुंकृति को हरने वाली है तेरी यह जलराशि अमर ॥ ७ ॥

पायस्पायमपायहारि जननि, स्वादु त्वदीयं पयो
नायन्नायमनायनीमकृतिनां मूर्ति दृशोः कैशवीम् ।
स्मारंस्मारमपारपुण्यविभवं कृष्णेति वर्णद्वयं
चारञ्चारमितस्ततस्तव तटे मुक्तो भवेयं कदा ॥ ८ ॥

पी-पीकर पापों को हरने वाला तेरा वारि मधुर
ले-लेकर नयनों में केशव की वह मूर्ति सुघर ।
सच अपार पुण्यों का वैभव कृष्ण नाम जप-जप कर
मुक्त होऊँगा तेरे तट पर विचरण कर कब इधर उधर ॥ ८ ॥

मातर्वारिणि पापहारिणि तव प्राणप्रयाणोत्सवं
सम्प्राप्तेन कृतां नरेण सहतेऽवज्ञां कृतान्तोऽपि यत् ।
यद्वा मण्डलभेदनादुदयिनीश्चण्डद्युतिर्वेदनाश्
चित्रं तत्र किमप्रमेयमहिमा प्रेमा यदौत्पत्तिकः ॥ ९ ॥

माता तेरे पापहारी जल में जो करता तन का त्याग
उस नर से अपमान सहन करके कृतान्त भी जाता भाग ।
सूरज भी सहता है मण्डल भेदन की पीड़ा की आग
है विचित्र कुछ नहीं दोनों का है तुम पर निसर्ग अनुराग ॥ ९ ॥

संज्ञाकान्तसुते, कृतान्तभगिनि, श्रीकृष्णनित्यप्रिये,
पापोन्मूलिनि, पुण्यधात्रि, यमुने, कालिन्दि, तुभ्यं नमः ।
एवं स्नानविधौ पठन्ति खलु ये नित्यं गृहीतव्रतास्
तानामन्त्रितसंख्यजन्मजनितं पापं क्षणादुज्झति ॥ १० ॥

हे सूर्यसुता, यम की भगिनी हे, श्रीकृष्णप्रिया हे तुम अभिराम,
पापोन्मूलिनि, पुण्यधात्री यमुना, कालिन्दी, तुम को प्रणाम ।
इस प्रकार जो स्नानसमय में लेते तेरे पावन नाम
अगणित जन्मों के पापों से पाते क्षण में मुक्ति ललाम ॥ १० ॥

अयं पण्डितराजेन श्रीजगन्नाथशर्मणा ।
स्तवः कलिन्दनन्दिन्या निर्मलो निरमीयत ॥ ११ ॥

यह पंडितराज श्री जगन्नाथ शर्मा ने स्तोत्र ललाम ।
रचा कलिन्दनन्दिनी की स्तुति में निर्मल अभिराम ॥ ११ ॥

—०—

करुणा-लहरी

(हिन्दी पद्यानुवाद)

विषीदता नाथ विषानलोपमे विषादभूमौ भवसागरे विभो ।
परं प्रतीकारमपश्यताधुना मयायमात्मा भवते निवेदितः ॥ १ ॥

विषाद पाते इस विषानलोपम
विषादभूमि भवसागर में विभो ॥
दूसरा प्रतीकार न देखकर अब
मैंने स्वयं को निवेदित किया आपको प्रभो ॥ १ ॥

भवानलज्वालविलुप्तचेतनः शरण्य तेऽङ्घ्रि शरणं भयादयाम् ।
विभाव्य भूयोऽपि दयासुधाम्बुधे विधेहि मे नाथ यथायथेच्छसि ॥ २ ॥

भवाग्नि ज्वाला से विनष्ट चेतना
शरण्य तेरे चरण शरण में भयभीत आया ।
फिर भी सोचकर तुम मुझको दयानिधे ।
करो नाथ जैसा हो मन में समाया ॥ २ ॥

विहाय संसारमहामरुस्थलीमलीकदेहादिमिलन्मरीचिकाम् ।
कृपातरङ्गाकुलमन्मनोमृगो विगाढुमीश त्वयि गाढमीहते ॥ ३ ॥

छोड़कर संसार महामरुस्थली
और मिथ्या देहादि मिलन मरीचिका ।
कृपा तरंगों से आकुल मन हिरण
हे ईश ! तुम में डूबना चाहता है ॥ ३ ॥

त्वदंघ्रिफुल्लाम्बुजमध्यनिर्गलन् मरन्दनिस्यन्दनितान्तलम्पटः ।
मनोमिलिन्दो मम मुक्तचापलस्त्वदन्यमीशान, तृणाय मन्यते ॥ ४ ॥

तुम्हारे चरणकमलों से निकलते हुए
पराग का यह लम्पट ।
मन मिलिन्द मेरा अचपल यह
तुम्हें छोड़, औरों को तिनका समझता ॥ ४ ॥

जगत्त्रयत्राणविधौ धृतव्रतं तवाङ्घ्रिराजीवमपास्य ये जनाः ।
शरण्यमन्यन्मृगयन्ति, यान्ति ते नितान्तमीशान, कृतान्तदेहलीम् ॥ ५ ॥

त्रिभुवनत्राणपरायण भगवन् !
तुम्हारे चरणाम्बुज छोड़ जो जन ।
शरण्य अन्य खोजते जाते वे
निश्चय ही प्रभु ! यमराज भवन ॥ ५ ॥

रमामुखाम्भोजविकासनक्षमो जगत्त्रयोद्बोधविधानदीक्षितः ।
कदा मदज्ञानविभावरीं हरे, हरिष्यति त्वन्नयनारुणोदयः ॥ ६ ॥

रमा-मुख-कमल-विकास में समर्थ
त्रिभुवन-बोधन के व्रत-धारी ।
कब मेरी अज्ञान निशा को
हे हरि ! हरेगा तव नयनारुण उदयंकारी ॥ ६ ॥

सुरासुरस्वान्तचकोरचुम्बिता समस्तसंतापचयापनोदिनी ।
महानिशीथे मम मानसे कदा स्फुरिष्यति त्वन्मुखचन्द्रचन्द्रिका ॥ ७ ॥

सुर असुरों के चितचकोर से चुम्बित
समस्त संताप समूह नाशिनी ।
मेरे मन की गहन निशा में
कब चमकेगी तव मुखचन्द्रचन्द्रिका ॥ ७ ॥

सुयौवनापाण्डुरगण्डमण्डलप्रतिस्फुरत्कुण्डलताण्डवाद्भुतम् ।
गदाग्रज, त्वन्मुखफुल्लपङ्कजं कदा मदक्ष्णोरतिथीभविष्यति ॥ ८ ॥

सुन्दर यौवन से शुभ्र कपोल गोल पर
नित्य चमकते कुण्डल ताण्डव से अद्भुत ।
हे गदाग्रज ! तुम्हारा उत्फुल्ल कमल सम आनन
कब मेरे नयनों को होगा प्रस्तुत ॥ ८ ॥

सुरापगातुङ्गतरङ्गचालितां सुरासुरानीकललाटलालिताम् ।
कदा दधे देव दयामृतोदधे, भवत्पदाम्भोरुहधूलिधोरणीम् ॥ ९ ॥

देवनदी की तुंग तरंगों से संचालित
सुर असुरों की सेनाओं के ललाट से लालित ।
कब धारण करूँगा हे देवदयासुधानिधे !
तव चरणाम्बुज पराग राजि को ॥ ९ ॥

महाजवाश्छिन्नविवेकरश्मयो मदोद्धता देव, मदक्षवाजिनः ।
हरे, समासाद्य तवाङ्घ्रिमन्दुरामपास्तवेगा दधतां सुशीलताम् ॥ १० ॥

जिनके महावेग से टूटी है विवेक की रज्जू
हे देव ! मदोद्धत हैं मेरे इन्द्रिय घोड़े ।
हे हरि ! प्राप्त कर तव चरणों की घुड़शाला
शान्तवेग बन, धारण करें सुशीलता को ॥ १० ॥

पुरातनानां वचसामगोचरं महेशितारं पुरुषोत्तमं पतिम् ।
अपास्य तं त्वां निरपत्रपा सती सती मतिर्मे कथमन्यमेष्यति ॥ ११ ॥

पुरातनों की वाणी से तुम रहे अगोचर
महा ईश पुरुषोत्तम पति हो, तुम को छोड़ ।
होकर के निर्लज्ज सती मति मेरी कैसे

बोलो, जाएगी पर की ओर ॥ ११ ॥

न जाग्रता स्वप्नगतेन वा मया समीहितं ते करुणालवादृते ।
गिरं मदीयां यदि वेत्सि तात्त्विकीं तदा जगन्नायक, मामुरीकुरु ॥१२॥

सोते और जागते तेरे करुणालव को छोड़
कभी नहीं कुछ चाहा मैंने ।
यदि मेरी वाणी को सत्य समझते हो तो
करो जगन्नायक ! मुझको स्वीकार ॥ १२ ॥

अयि दीनतरं दयानिधे दुरवस्थं सकलैः समुज्झितम् ।
अधुनापि न मां निभालयन् भजसे हा कथमश्मचित्तताम् ॥ १३ ॥

हे करुणासागर ! सबने मुझको दुत्कारा
हूँ दुरवस्था को प्राप्त दीनतर ।
अब भी मुझको न देखते हाय !
कैसा है मन पत्थर से कठोरतर ॥ १३ ॥

सुमहन्ति जगन्ति बिभ्रतस्तव यो नाविरभून्मनागपि ।
स कथं परमाप्तदेहिनां परमाणोर्मम धारणे श्रमः ॥ १४ ॥

इस महान् विश्व को धारण करते करते
तुम को हुआ नहीं थोड़ा भी तो श्रम ।
फिर कैसे देहधारियों में अति तुच्छ
मेरे धारण में होगा श्रम । १४ ॥

नितरां विनयेन पृच्छते सुविचार्योत्तरमत्र यच्छ मे ।
करितो गिरितोऽप्यहं गुरुस्त्वरितो नोद्धरसे यदद्य माम् ॥ १५ ॥

अत्यन्त विनय से पूछता हूँ
सोच समझकर उत्तर दो मुझको ।
क्या मैं गज से पर्वत से भी हूँ भारी
जो तुम शीघ्र नहीं करते मेरा उद्धार ॥ १५ ॥

न धनं न च राज्यसम्पदं नहि विद्यामिदमेकमर्थये।
मयि धेहि मनागपि प्रभो, करुणाभङ्गितरङ्गितां दृशम् ॥ १६ ॥

न धन न राज्य सम्पदा
न विद्या को ही चाहता विभो !
मुझ पर थोड़ी ही करो प्रभो !
करुणाभङ्गितरंगित दृष्टि ॥ १६ ॥

अयमत्यधमोऽपि निर्गुणो दयनीयो भवता दयानिधे।
वमतां फणिनां विषानलं किमु नानन्दयिता हि चन्दनः ॥ १७ ॥

हूँ अति अधम और निर्गुण जन
तो भी दया करो हे दयानिधे।
विष की आग उगलते फणियों को
क्या आनन्द नहीं देता चन्दन ॥ १७ ॥

क्षुधितस्य नहि त्रपास्ति मे प्रतिरथ्यं प्रतिगृह्णतः कणान्।
अकलङ्क, यशस्करं न ते भवदीयोऽपि यदन्यमृच्छति ॥ १८ ॥

मुझ भूखे को लाज नहीं है
गली गली कण लेने में।
हे अकलङ्क ! यशस्कर नहीं तुम्हें
तुम्हारा भी जो औरों से मांगे ॥ १८ ॥

नितरां नरकेऽपि सीदतः किमु हीनं गलितत्रपस्य मे।
भगवन् कुरु सूक्ष्ममीक्षणं परतस्त्वां जनता किमालपेत् ॥ १९ ॥

नितान्त नरक में दुख पाते मुझ
निर्लज्ज का बोलो बोलो क्या बिगड़ा ?
भगवन्, करो सूक्ष्म विचार
लोग कहेंगे क्या तुमको ॥ १९ ॥

नरके निजकर्मकल्पिता भजतो मे महतीरपि व्यथाः ।
इदमेकमसह्यमीक्षका यदनाथं निगदन्ति मां विभो ॥ २० ॥

अपने कर्मों से प्राप्त नरक में
पाता हूँ मैं महाव्यथा ॥
है असह्य यह प्रभो, कि दर्शक
जो अनाथ कहते मुझको ॥ २० ॥

मृगदन्तिमुखान् मया सह प्रतिरुद्धान् भवजालबन्धने ।
तव मामपहाय मुञ्चतः करुणा किं न भिनत्ति मानसम् ॥ २१ ॥

फंसे हुए हाथी हरिणों को
भव बन्धन में मेरे साथ ।
मुझे छोड़ तुम उन्हें छुड़ाते
क्या करुणा नहीं वेधती मन ॥ २१ ॥

निरुपाधिजनार्तिहारिणं भगवंस्त्वामवगत्य तत्त्वतः ।
कृतपुण्यचयावहेलनं कथमब्जेक्षण, मामुपेक्षसे ॥ २२ ॥

स्वार्थ बिना तुम दीनों के दुख हरते भगवन् !
यह जान तुम्हारा तत्त्व तभी मैंने ।
पुण्य पुंज की करी अवज्ञा
कमलनयन, क्यों करते मुझे उपेक्षित ॥ २२ ॥

सततं निगमेषु शृण्वता वरद, त्वां पतितानुपावनम् ।
पुरु पापमुपास्यतेऽनिशं त्वयि विश्वासधिया मया विभो ॥ २३ ॥

सुनता रहा सदा श्रुतियों में
तुमको वरद पतितपावन भगवन् ।
नित्य पापों की करी उपासना
तुम पर ही कर पूरा-पूरा विश्वास ॥ २३ ॥

सुकृतं न कृतं पुरा कदाप्यथ सर्वं कृतमेव दुष्कृतम् ।
अधुना गलितह्रिया मया भगवंस्त्वां प्रति किं निगद्यताम् ॥ २४ ॥

सुकृत नहीं किए पहले कभी
सभी किए दुष्कर्म ही ।
अब हो निर्लज्ज आज मैं
क्या कहूँ तुम्हारे प्रति भगवन् ॥ २४ ॥

मदकामविमोहमत्सरा रिपवस्त्वत्पुर एव तावकम् ।
धृतशाङ्‌र्गगदारिनन्दक, प्रतिकर्षन्ति कथं न वीक्षसे ॥ २५ ॥

मद काम मोह मत्सर रिपुजन
खींचते, तुम्हारे सम्मुख ही तेरे जन को ।
हे शाङ्‌र्गगधाधारी असिधर !
क्यों नहीं देखते तुम मुझको ॥ २५ ॥

अयि गर्तमुखे गतः शिशुः पथिकेनापि निवार्यते जवात् ।
जनकेन पतन् भवार्णवे न निवार्यो भवता कथं विभो ॥ २६ ॥

अरे ! गर्त में गिरे हुए शिशु को
पथिक भी उबारता है वेग से ।
पिता के द्वारा, भवसागर में गिरता हुआ
क्यों नहीं उबारा जाता मुझे ॥ २६ ॥

सुकृतप्रिय, मान्यथास्तु ते सुकृतिभ्यः सुखदस्य सुप्रथा ।
अपि पापभबिभ्रतस्तु मां तव विश्वम्भर नाम दुर्लभम् ॥ २७ ॥

सुकृतप्रिय, अन्यथा न हो तुम्हारी
सुकृतियों को सुख देने की यह रीत ।
मुझ पापी को धारण न किया तो
तुम्हारी दुर्लभ होगी विश्वंभर की प्रीत ॥ २७ ॥

वचनैः परुषैरिह प्रभो यदि रोषं समुपागतोऽसि मे ।
मुखरं कृतकोटिकल्मषं करुणाब्धे, जगतोऽपसारय ।। २८ ।।

यदि मेरे निष्ठुर वचनों से
क्रोध आ गया है प्रभु ! तुम को ।
तो इस वातूनी पापी को
करुणासागर ! शीघ्र करो जग से बाहर ।। २८ ।।

यदि वीक्ष्य ददासि मत्कृतिं न मयैव प्रतिगृह्यते तदा ।
अथ चेन् निजमाशयं प्रभो परितुष्टः शिरसा वहामि तत् ।। २९ ।।

यदि देते मेरे कर्मों को देख, दो
पर मैं न करूँगा अंगीकार ।
यदि खुद ही देना चाहो तो
हो परम संतुष्ट प्रभु ! शिर से है स्वीकार ।। २९ ।।

पतितोऽप्यति दुर्गतोऽपि सन्नकृतज्ञो निखिलागसां पदम् ।
भवदीय इतीरयंस्त्वया दयनीयस्त्रपयैव केवलम् ।। ३० ।।

पतित हूँ, अति दुखित भी, अकृतज्ञ हूँ
सभी पापों का परम स्थान ।
तुम्हारा होकर भी दयनीय हूँ
क्या यह कहने पर भी तुम्हें शर्म नहीं आती ।। ३० ।।

सुकृतप्रकृतौ जने त्वया कृतया किं कृपया कृपानिधे ।
यदि मादृशि सा विधीयते तव कीर्तिर्वद कीदृशी तदा ।। ३१ ।।

सत् स्वभाव वाले जन पर
की गई कृपा का क्या होगा ?
यदि मेरे जैसे पर वह हो तो बोलो
कीर्ति तुम्हारी तब कैसी हो ? ।। ३१ ।।

अयि शैशवलालितः शिशुः प्रतिबुद्धो जनकेन ताड्यते ।
न कदापि च लालितस्त्वया किमु ताड्यो भगवन् कुकर्मभिः ।। ३२ ।।

अरे ! बालपन में लालित शिशु
होने पर प्रतिबुद्ध पिता से दण्डित होता ।
न लालन किया कभी तुमने तो
क्यों दण्डित करते भगवन् ! कुकर्म से ।। ३२ ।।

अहमेव हि दोषदूषितो भगवंस्त्वां समुपालभे मुधा ।
रमणीविरहज्वरज्वलन्नमृतांशुं कुमतिर्विनिन्दति ।। ३३ ।।

भगवन् ! मैं ही दोषों से दूषित
तुमको व्यर्थ उलाहना देता ।
रमणी विरह व्यथा में जलता
कुमति सुधाकर को ही कोसता ।। ३३ ।।

करुणाकर, दुर्दशाकुलं पतितालम्बन, पापपञ्जरम् ।
अमृताम्बुनिधे, महाज्वरं नहि जह्या जगदीश जातु माम् ।। ३४ ।।

तुम करुणाकर, दुर्दशा-दुखी मैं,
पतितालम्बन तुम, मैं पापों का पिंजरा ।
तुम अमृत के सागर, मैं महाज्वर जीर्ण
जगदीश मुझे न देना छोड़ कभी ।। ३४ ।।

कटुजल्पनमल्पकस्य मे नहि ते कल्पयतु क्रुधं विभो ।
कुपितातुरबालभाषितं किमु गृह्णन्ति मनाङ् महाशयाः ।। ३५ ।।

कटुजल्पक मुझ छोटे पर
उचित नहीं प्रभु, क्रोध तुम्हारा ।
क्रुद्ध दुखी बालक की उक्ति पर

क्या कुछ देते हैं गुरुजन ध्यान ।। ३५ ।।

भुजगाहितकल्पितध्वज, स्फुरदाशाभुजगालिवेल्लितम् ।
जटिलज्वरकुञ्जरांकुश, ज्वरजुष्टं न जहीहि जातु माम् ।। ३६ ।।

भुजगशत्रु ही ध्वज कल्पित है
चंचल भुजगावली से हैं दिशा प्रकम्पित ।
जटिल ज्वर कुञ्जर के अंकुश
ज्वरग्रस्त मुझे न छोड़ना कभी ।। ३६ ।।

न वदामि न दुष्कृतं मया कृतमित्युक्तिमिमां तु मे शृणु ।
मम भीतिमनीनशद्ध विभो, पतितोद्धारक नाम तावकम् ।। ३७ ।।

न कहता न दुष्कृत मैंने किए
तब भी तो मेरी यह बात सुनो ।
मेरे भय का नाश किया प्रभु !
तुम्हारे पतितोद्धारक नाम ने ।। ३६ ।।

अपि शर्वपितामहादिभिर्भजनीयः पुरुषोत्तमो हि यः ।
तमुपालभमानमुद्धतं धिगिमं मां धिगिमां धियं मम ।। ३८ ।।

शंकर और पितामह आदि का भी
जो भजनीय है पुरुषोत्तम ।
उसे उलाहना देने वाले
मुझ उद्धत को है धिक्कार, मेरी बुद्धि को धिक्कार ।।३८।।

अथ सर्वमिदं मयोज्झितं भवतोऽन्यन् नहि किंचिदर्थये ।
मम मानसगोचरीभवत्वरविन्दाक्ष, तवाद्भुतं वपुः ।। ३९ ।।

अब यह सब कुछ मैंने छोड़ा
सिवा आपके कुछ न चाहता ।
मेरे मानस में गोचर हो
अरविन्दाक्ष ! तुम्हारा सुन्दर वपु ।। ३९ ।।

हरिनीलमयावनीतले वरवृन्दाविपिने विलासिनि ।
मणिमण्डपमध्यविस्फुरद् विबुधक्ष्मारुहमूलमाश्रितम् ॥ ४० ॥

हरितनीलमय अवनीतल वाले
वर वृन्दावन विलसित में ।
मणि मण्डप मध्य चमकता
कल्पवृक्ष के मूल समाश्रित ॥ ४० ॥

शिखिपिच्छमहामणिस्फुरन् मुकुटाकुञ्चितकान्तकुन्तलम् ।
कमनीयतरालकावलिभ्रमणभ्राजिललाटसुन्दरम् ॥ ४१ ॥

मयूरपिच्छ महामणि सा चमके
ढके मुकुट से कुन्तल कान्त ।
सुन्दर चंचल अलकावलि से शोभित
है सुन्दर प्रशस्त ललाट ॥ ४१ ॥

शरदिन्दुसहोदराननं दलदम्भोजपलाशलोचनम् ।
अरुणाधरकान्तिदन्तुर स्फुटदन्तांशुविकासिताम्बरम् ॥ ४२ ॥

शरदिन्दु सहोदर आनन है
कमल दलों से नेत्र युगल ।
अरुणाधर उज्ज्वल दांतों से
विकसित है सारा अम्बर ॥ ४२ ॥

दरपाण्डुरगण्डमण्डलप्रतिसर्पत्कमनीयकुण्डलम् ।
मणिमौक्तिकमञ्जुमञ्जरीमहनीयद्युतिरञ्जितश्रुति ॥ ४३ ॥

कुछ पाण्डुर कपोलमण्डल पर
चमक रहे कुण्डल कमनीय ।
मणि मुक्तामय मञ्जु मञ्जरी की
महनीय द्युति से शोभित श्रुति रमणीय ॥ ४३ ॥

पृथुवर्तुलमौक्तिकावलीसुषमावेल्लितकान्तकन्धरम् ।
हरिनीलगिरिद्युतिद्रुहा कमलामन्दिरवक्षसाञ्चितम् ।। ४४ ।।

स्थूल गोल मोती माला की
शोभा से वेल्लित सुन्दर कन्धर ।
नीलगिरिद्युतिद्रोही हरि का
वक्ष रमा का पूज्य निवास ।। ४४ ।।

चरणाब्जनखावलम्बिनीं भुजगाकारभुजान्तरागताम् ।
निबिडाभ्रमिव क्षणप्रभां वहदुत्फुल्लवनामलस्रजम् ।। ४५ ।।

चरणकमल के नख तक लटकती,
भुजगाकार भुजाओं मध्य ।
घने मेघ में बिजली सी धारण करते हो
उत्फुल्ल अमल वनमाला ।। ४५ ।।

मणिकङ्कणकान्तिमांसलं दरफुल्लाम्बुजसुन्दरद्युति ।
पतितोद्धरणे दृढव्रतं कमनीयं करयोर्युगं दधत् ।। ४६ ।।

मणि कंकण से कान्तिमान मांसल
कुछ विकसित सरसिज सी सुन्दर द्युति वाले ।
पतितजनों के निस्तारण में दृढ़व्रत
कमनीय युगल करों को हो धारे ।। ४६ ।।

वररत्नमयाङ्गुलीयकावलिशोभामिलिताङ्गुलीगणैः ।
मुहुराकुलितेन वेणुना वशयत् प्राणभृतां मनः श्रुतीः ।। ४७ ।।

रत्नजटित अंगूठी की शोभा मिलने से
शोभित हैं अँगुलियाँ सारी ।
फिर आकुल वेणु से वश में करते हो
प्राणियों के मन प्राणों कानों को ।। ४७ ।।

उदरद्युतिनिम्नगोच्छलल्लहरीरूपकरोमराजिकम् ।
पशुपालविलासिनीलसन्नयनाकर्षणनाभिनिम्नितम् ॥ ४८ ॥

उदर द्युति नीचे को जाती, रोमराजि से
उच्छल लहरों सी द्युतिमान ।
गोपवधू के सुन्दर शोभित
नयनों की मोहक नाभि गभीर ॥ ४८ ॥

कनद्द्रवगौरमम्बरं दधतोरुद्वितयेन सुन्दरम् ।
उदयन्मणिनूपुरप्रभासरणिश्रेणिजटालजानुकम् ॥ ४६ ॥

स्वर्णद्रव से गौर वस्त्र को धारण करते हुए
युगल सुन्दर जांघों पर ।
मणि नूपुर की प्रभा कान्ति से
शोभित हैं दोनों जानु ॥ ४६ ॥

अगिरीर्णगजेन्द्रगोपने दधता जाङ्घिकतामलौकिकीम् ।
त्रिजगन्महनीयमूर्तिना वरजङ्घायुगलेन शोभितम् ॥ ५० ॥

ग्राह द्वारा निगले जाते गजेन्द्र की रक्षा में
रखते हो अलौकिक जङ्घाबल ।
त्रिभुवन मोहन मूर्ति शोभित है
श्रेष्ठ सुघर जंघायुगलों से ॥ ५० ॥

कुलिशांकुशकम्बुसाम्बुजध्वजचक्राद्यभिरामलक्ष्मणा ।
अरुणारुणकोमलत्विषा कमनीयेन तलेन राजितम् ॥ ५१ ॥

वज्रांकुश शंख कमल ध्वज
चक्रादि अभिराम लक्ष्मलक्षित ।
अरुण कमल की कोमल कान्ति सा
राजित है कमनीय चरणतल ॥ ५१ ॥

विधिशर्वमुखामरस्फुरन्मुकुटोन्निद्रमणिप्रभाकुलम् ।
नखचन्द्रमयूखमूर्च्छिताखिलतापं पदयोर्युगं दधत् ॥ ५२ ॥

ब्रह्मा शंकर अमरगणों की उज्ज्वल
मुकुटमणियों की प्रभा लोटती जिन पर ।
उन चरणों को धारण करता रहूँ निरन्तर
सकल ताप मूर्च्छित करने वाली है जिनकी नखचन्द्र-मयूख ॥५२॥

सरतः सरणौ सतो बहिः स्वपतो वालपतो गृहान्तरे ।
वपुरीदृशमीश, तावकं हृदयालम्बनमस्तु मे सदा ॥ ५३ ॥

सज्जन की सरणि में चलता हुआ निरन्तर
बाहर भीतर सोते कहते ।
हे ईश ! तुम्हारा ऐसा वपु
हृदयालम्बन हो मुझे सदा ॥ ५३ ॥

नवनीरदनीलिमद्युतिर्नमनीयो निगमैर्निरन्तरम् ।
निरये निपतन्तमाशु मां नयनेनापि सनाथयेद् विभुः ॥ ५४ ॥

नव जलधर सी नीलकान्ति है
नमनीय निरन्तर निगमों द्वारा ।
नरक में शीघ्र गिरते हुए मुझको
करो सनाथ प्रभु ! नयनों द्वारा ॥ ५४ ॥

प्रणिपत्य विधे, भवन्तमद्धा विनिबद्धाञ्जलिरेकमेव याचे ।
जनुरस्तु कुले कृषीवलानामपि गोविन्दपदारविन्दभाजाम् ॥ ५५ ॥

करके प्रणिपात प्रभु ! तुमको मैं
विनयबद्ध अंजलि से एक यही माँगू ।
हो जन्म भले ही कृषक जनों के कुल में
पर हों वे गोविन्दपदारविन्द-अनुरागी ॥ ५५ ॥

—०—

लेखक की अन्यतम कृति

गंगालहरी पर कुछ सम्मतियाँ

पण्डितराज जगन्नाथ की इस सुप्रसिद्ध और लोकप्रिय सरस रचना का अनुवाद कर आपने सुन्दर काम किया है।

मुझे विश्वास है और भी लहरियों का अनुवाद आप इसी सहज भाव से कर सकेंगे।

विष्णु प्रभाकर

अनुवाद अच्छा हुआ है। मूलकृति का भाव सौन्दर्य अपने अनुवाद में उतारने में लेखक को सफलता मिली है।

डाॅ बरसानेलाल चतुर्वेदी

भक्तिभाव से प्रेरित पढ़कर निर्विवाद अनुवाद।
गंगालहरी की लहरों सा उठा अतुल आह्लाद॥
पावन किया राष्ट्र भाषा को तुमने रामप्रसाद।
म्लेच्छ संग पीड़ित भारत का दूर होय अवसाद॥

पंडित ब्रजनारायण 'ब्रजेश'
भूतपूर्व संसत्सदस्य

आपका यह सत्प्रयास है। भविष्य में भी अन्य ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद भी आपके द्वारा हो, ऐसी मेरी कामना है।

त्यागमूर्ति स्वामी गणेशानन्द
कनखल, हरिद्वार

अनुवादक ने कवि के भावों को गहराई और सूझ बूझ से पकड़ते हुए और अपने प्रभावशाली कवित्वभावों में व्यक्त करते हुए पाठकों के हृदय को उद्वेलित किया है। उन्होंने हिन्दी कविता की सरसता, प्रवाह और एकतारता का सफलता पूर्वक निर्वाह किया है।

दैनिक "हिन्दुस्तान" नई दिल्ली-१

प. रामप्रसाद कौशिक ने गंगालहरी का हिन्दी में पद्यबद्ध अनुवाद कर न केवल संस्कृत भाषा के गहन पाण्डित्य का परिचय दिया है अपितु संस्कृतानुरागियों को पण्डितराज की इस अमरकृति से परिचय कराने का एक सफल प्रयास भी किया है। श्री कौशिक जी का यह सत्प्रयास सर्वथा सराहनीय है। आशा है सुधीजन इस पुस्तक का हार्दिक समादर करेंगे।

श्री जयवंशी झा
दैनिक "वीर अर्जुन" नई दिल्ली-१

प्रस्तुत ग्रन्थ में अनुवादक ने पंडितराज के श्लोकों का भाषानुवाद स्वच्छन्द छन्द वाले चतुष्पद पद्यों में किया है। छन्द का प्रवाह विषय के अनुरूप सरस एवं गेय है। कवि के भाव का निर्वाह अनुवादक ने अपनी कवित्वपूर्ण सहृदयता के कारण ठीक तरह से किया है।

"अनुवाद" त्रैमासिक
भारतीय अनुवाद परिषद्
ई ४/२३ मॉडल टाउन, दिल्ली-९

यों तो अनुवाद स्वयं ही कठिन साधना का कार्य है, उस पर भी काव्य का काव्य में अनुवाद तो और भी दुष्कर है।

प्रकृत ग्रन्थ भी इस दृष्टि से एक परम दुष्कर कार्य करने का सत्साहस भरा श्रमपूर्ण प्रयास है।

पं. शिवनरायण शास्त्री

संस्कृत विभाग, किरोड़ीमल कालेज, दिल्ली-७

गङ्गा भारतीय वाङ्मय एवं भारतीय संस्कृति का आधार स्तम्भ है। पण्डितराज जगन्नाथ की अक्षय ख्याति का प्रमुख कारण गंगा-लहरी भी है। इस ग्रन्थरत्न का सरस मनोहारी अनुवाद करके श्री कौशिक जी ने हिन्दी प्रेमियों का बड़ा उपकार किया है।

मासिक "लोकालोक" कमलानगर दिल्ली-७

मौलिकता की अनुभूति तन्मयीभावनक्षमता और गंगा के प्रति श्रद्धातिरेक की स्थापना आदि अनेकानेक लाभ इस अनुवाद से निश्चित ही होंगे।

श्री महावीर कौशिक

हिन्दी विभाग, श्यामलाल कालिज, शाहदरा, दिल्ली-३२

श्री कौशिक जी अपने परिश्रम में पूर्ण सफल हुए हैं। संस्कृत पठन की योग्यता न रखने वाले पाठकों के लिए आपने मुक्ति का द्वार खोल दिया है और एतदर्थ वे सम्मानार्ह एवं बधाई के पात्र हैं।

डॉ वेदप्रकाश कौशिक

दैनिक हिन्दी 'मिलाप', हैदराबाद

सरस सरल प्राञ्जल भाषा में गंगालहरी का पद्यानुवाद प्रस्तुत करके आपने गंगाप्रेमी भारतीय जनता का महान् हित किया है। पुस्तक सर्वथा पठनीय एवं सग्राह्य है।

साप्ताहिक अमर भारत
दिल्ली।

अमृतलहरी और गंगालहरी का काव्यानुवाद मिला। अति सुन्दर।

रवीन्द्र मिश्र
दिल्ली।

हमारी धार्मिक सेवायें

★ अपने धार्मिक उत्सवों को सफल बनाने के लिये हम से चोटी के वक्ता और भजनोपदेशक मंगवाइये।

★ सब प्रकार के संस्कार, यज्ञ, श्रीमद्भागवत सप्ताहादि अनुष्ठान सम्पन्न कराने के लिये सुयोग्य विद्वानों की सेवायें प्राप्त करें।

★ धार्मिक, सामाजिक एवं राष्ट्रिय कर्तव्य जानने के लिये हमारा 'लोकालोक' मासिक-पत्र पढ़िये। मूल्य ६) वार्षिक। एक प्रति ६० पैसे।

★ धर्म का वैज्ञानिक रहस्य जानने के लिये हमारा उपादेय साहित्य पढ़िये

वेददिग्दर्शन ८) पुराणदिग्दर्शन १५), क्यों पूर्वार्द्ध १२) क्यों उत्तरार्ध १५) संस्कार विधि ८) दृष्टान्त दिग्दर्शन ८)

इत्यादि छोटी बड़ी ५० पुस्तकों का पूरा सैट कमीशन काटकर १००) में। डाक व्यय पृथक्

लोकालोक के निम्न विशेषांक प्राप्य है—

शास्त्रार्थ-महारथी अभिनन्दनाँक ४), शंका समाधानांक ४) श्री रामचरितांक ४) सार्वभौम हिन्दू ४) मन्त्राँक ३)

माधव पुस्तकालय

१०३ ए, कमलानगर दिल्ली-७

सम्पा० मु० प्र०—श्रीकण्ठ शास्त्री एम० ए० धर्म